चतुर्थ अध्याय

"उपसंहार"

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

लक्ष्मीनारायण मिश्र का आधुनिक हिन्दी नाटककारों में महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने हिन्दी नाट्य-साहित्य को न केवल समृद्ध ही किया, बल्कि कई परम्पराओं का निर्माण कर परवर्ती नाटकों के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया। हिन्दी नाटक -धारा में दिशा-परिवर्तन का श्रेय मिश्रजी को है। आदर्शवादी जयशंकर प्रसाद के बाद वर्तमान काल के सर्वश्रेष्ठ नाटककार मिश्रजी ही हैं। आधुनिक हिन्दी नाटक को नयी दिशा तथा नूतन दृष्टि प्रदान करने का श्रेय सर्वप्रथम मिश्रजी को है। इब्सन और शा के नाटकों का प्रभाव इनपर अधिक रहा हैं। अतः हिन्दी नाटक की यथार्थवादी धारा में आपका स्थान सर्वोच्च है।

बाल्यकाल से ही भारतीय संस्कृति के प्रति मिश्रजी को लगाव एवं आस्था रही है। इसलिए उनके नाटकों में भारतीय संस्कृति की प्रधानता रही है। उनके नाटकों का स्वरूप यद्यपि पाश्चात्य है किंतु आत्मा भारतीय है। भारतीयता उनके नाटकों का प्राण है। वे भारतीय संस्कृति के उन्नायक हैं। भारतीय आदर्श एवं साहित्य और संस्कृति के प्रति मिश्रजी की अगाध श्रद्धा रही है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के आगमन से हिन्दी नाटक के अभावों की पूर्ति हुई। इन्होंने द्विजेंद्रलाल राय की मिथ्या भावुकता, तथा आदर्शवाद और प्रसाद के सौंदर्यवाद तथा रूढिवाद का विरोध किया हैं। जीवन की सम-सामायिक समस्याओं को हिन्दी-नाट्य-साहित्य में सर्वप्रथम मिश्रजी ने ही प्रस्तुत किया है। मनोरंजन के लिए नहीं, मनुष्य के भीतर पश्चाताप निर्माण करने के हेतु इन्होंने साहित्य की रचना की है। मिश्रजी हिन्दी के युगांतकारी नाटककार हैं। वे यथार्थ को महत्व देकर

स्वयं को बुद्धिवादी घोषित करते हैं। वे युग-परिवर्तन के साथ चलना पसन्द करते हैं। लेकिन वे स्वयं अपने नाटकों में भारतीय परम्परावादी बन गये है। भावना के धरातल पर ही इन्होंने बुद्धिवादी की व्याख्या की है और समस्या का हल बुद्धिवाद से तर्क-वितर्क के रूप में प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों के पात्र प्रथम भावुकतावादी बन जाते हैं, फिर बुद्धिवादी का रूप धारण करते हैं। कलाकार के रूप में इनकी रचना यथार्थोन्मुख है, किन्तु विचारों के क्षेत्र में वे आदर्शवादी परम्परावादी है।

मिश्रजी ने संस्कृति-प्रधान ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक समस्या प्रधान नाटकों की सृजना की है। इन्होंने कल्पना, भावुकता और अतिरंजना का बहिष्कार कर मनोवैज्ञानिक समस्या प्रधान नाटकों की रचना कर हिन्दी नाट्य साहित्य को एक श्रेष्ठ नव-उपलब्धि प्रदान की। इनके नाटकों में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य कला की मान्यताओं का सुन्दर सामंजस्य प्रस्थापित हुआ है।

नाटक यह प्राचीन विधा है। नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट्" धातु से माना है। नाटक की व्युत्पत्ति धार्मिक पर्वो और उत्सवों के अवसर और वीरों की पूजा के अवसर पर हुई। प्राचीन काल में रासलीला, लोकनाटक, रामायण, महाभारत, ऋग्वेद आदि में नाटक का अविर्भाव हुआ।

हिन्दी नाटक का विकास भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। इस युग के पूर्व साहित्यिकता की दृष्टि से कोई श्रेष्ठ उपलब्धि नहीं हुई। "आनंदरघुनंदन" को प्रथम मौलिक नाटक माना गया है। मनोरंजन की दृष्टि से काव्यबद्ध नाटक ही लिखे गये। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ही हिन्दी के आद्य नाटककार हैं। इन्हें संस्कृत, प्राकृत बंगला तथा अँग्रेजी साहित्य का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक एवं राजनीतिक नाटकों के साथ निषेध, उपाख्यान, इतिहास एवं काव्यग्रंथो की रचना की। इनके नाटकों में जीवन और कला, सौंदर्य और शिव मनोरंजन और लोक सेवा का सुन्दर संगम मिलता है। खडी बोली हिन्दी गद्य के प्रसार के लिए इन्होंने गद्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलायी। और अन्य नाटककारों को लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने प्रतिभा के बल पर प्राचीन और नवीन, भारतीय और पाश्चात्य कला तत्त्वों का समन्वय किया है।

भारतेन्दुकालीन नाटककारों में प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट आदि का हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में विशेष योगदान रहा है। इस युग का नाट्य साहित्य जनता का साहित्य धा। इस काल में संस्कृत, बंगला तथा अँग्रेजी नाटकों का अनुवाद भी हुआ।

द्विवेदी युग मे मौलिक नाटकों की रचना कम हुई और अनुवाद नाटकों की प्रधानता रही। लाला सीताराम, ज्वाला प्रसाद, गोपालराम गहमरी, रामकृष्ण वर्मा, गोपीनाथ आदि ने संस्कृत, बँगला और अँग्रेजी नाटकों का अनुवाद किया। इस कालीन नाटकों में बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा, वृद्ध-विवाह आदि समस्या को प्रस्तुत किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मौलिक नाटकों की रचना कर भाषा और शैली, सभी क्षेत्रों में सुधार एवं संस्कार लाने का सफल प्रयास किया।

प्रसाद युग हिन्दी के इतिहास में उत्थान का स्वर्ण युग है। जयशंकर प्रसाद के आगमन से द्विवेदी युग में नाटक की गति कुछ धीमी पड गयी थी, उसे रफ्तार गति मिली। इनके नाटकों में इतिहास, धर्म, दर्शन, विज्ञान-कला, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान तथा जीवन के विराट चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। पौर्वात्य और पाश्चात्य इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय इनके नाटकों की विशेषताएँ हैं। वस्तुतः प्रसाद कवि और दार्शनिक है, नाटककार कम। नाटकों को साहित्यिक स्वाभाविक, मौलिक तथा परिनिष्ठित रूप देने का प्रयास प्रसाद ने किया और नाट्य-कला सर्वोच्च शिखर पर पहूँच गयी।

इस युग के नाटककारों ने पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक नाटक लिखे गये। गंगाप्रसाद, लक्ष्मीप्रसाद, महावीरसिंह, मिश्रबंधु, बेचन शर्मा 'उग्र' आदि नाटककारों ने नाटक रचना की और अनुवाद भी किये।

प्रसादोत्तर युग में नाट्य रूपों के विविधता का समृद्ध विकास हो गया। नाटका का विषय, शैली, शिल्प सभी क्षेत्रों में विकास हो गया। सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मण स्वरूप, चतुरसेन शास्त्री, चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि नाटककारों ने अपनी रचनाओं मे मानवीय भावनाओं का अंकन तथा यथार्थ और आदर्श का समन्वय

किया। ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक औरसमस्या-प्रधान नाटक इस काल में लिख गये। इस काल का नाट्य-साहित्य विभिन्नताओं और प्रयोगों का प्रतीक है। व्यक्ति और समाज की विषमता का समन्वय करने का प्रयास इस युग के नाटककारों ने किया हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड मे नाटक-साहित्य का पूर्ण विकास हुआ। पाश्चात्य नाट्य-साहित्य का प्रभाव इस काल में अधिक रहा है। अभिनय, रंगमंचियता, नवीन प्रयोगों तथा टेक्नीक की ओर नाटककारों ने अधिक ध्याान दिया। आधुनिक नाटककारों में सेठ गोविंददास, वृंदावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, भगवतीचरण वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि ने हिन्दी नाटक के विकास की गति को उत्तेजना दी। आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा शैली का प्रयोग करते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण स्वीकार किया। इस काल में ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों के साथ जीवनी-परक समस्या-मूलक, गीति-नाट्य, ध्वनिनाटक, सिने नाटक एवं प्रतीक नाटक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे गयें। इस काल के नाटकों में पारिवारिक आर्थिक जातिगत समस्या एवं मानव मन की गूथियों को सुलझाने का प्रयास किया गया।

आधुनिक युग की प्रणाली समस्या नाटक है। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र समस्या नाटक के उद्भावक हैं। इन्होंने छ: समस्या नाटकों की रचना की। इब्सन और शा का प्रभाव इनपर अधिक रहा हैं। इनके नाटकों में यथार्य एवं बौद्धिकता का चित्रण अधिक मिलता है। उपेंद्रनाथ अश्क, पृथ्वीनाथ शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, वृंदावनलाल वर्मा, आदि प्रमुख नाटककार हैं। इन्होंने राजनीतिक, पारिवारिक सामाजिक समस्या के साथ नारी समस्या का चित्रण विस्तृत रूप से अपने नाटकों में किया है। पाश्चात्य और पौर्वात्य विचारधारा का सुन्दर सामंजस्य इनके नाटकों में हुआ है। मानव के अंतर्द्व की समस्या विवाह, प्रेम तथा काम समस्या का चित्रण अधिक रूप से हुआ है। समस्या नाटक की नयी विचार प्रणाली ने हिन्दी नाट्य-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। वर्तमान समस्या को इन नाटकों में महत्त्व दिया गया। अतः हिन्दी

नाटक का विकास युगांतकारी तथा प्रगतशील रूप में हुआ है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र वर्तमान काल के सर्वप्रथम समस्या नाटककार हैं। इन्होंने "सन्यासी", "राक्षस का मंदिर", "मुक्ति का रहस्य", "सिंदूर की होली", "राजयोग", तथा "आधी रात" आदि समस्या नाटकों की रचना की। इन कृतियों में नारी समस्या का स्वर प्रमुख रहा है।

"सन्यासी" समाजोन्मुख समस्या नाटक है। इसमें स्वच्छंद प्रेम की समस्या को प्रस्तुत करते हुए विवाह को महत्त्व दिया है। अनमेल विवाह, सहशिक्षा तथा अवैध्य संतान की समस्याओं को चित्रित किया गया हैं। इसमें प्रेम का सामाजिक रूप विवाह और विवाह का वैयक्तिक रूप प्रेम बताया है। "राक्षस का मंदिर" नाटक में रोमांस और आदर्श की उपेक्षा कर विवाह, को महत्त्व दिया है। रोमांटिक प्रेम पर वैवाहिक जीवन की विजय दिखलायी है। इस नाटक में प्रेम और कर्तव्य का द्वंद, सर्वत्र दिखायी देता है जो शिक्षित समुदाय की सबसे बडी समस्या है।

"मुक्ति का रहस्य" नाटक में रोमांस और आदर्श की उपेक्षा कर विवाह को महत्त्व दिया है। रोमांनी वृत्ति के धरातल पर प्रेम की समस्या को प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य दृष्टिकोण को अपनाते हुए इस समस्या को सुलझाने का प्रयास भारतीय ही रहा है। स्वच्छंदतावाद पर यथार्थवाद की विजय दिखलायी है। "सिंदूर की होली" नाटक में आधुनिक एवं चिरंतन नारीत्व की समस्या प्रेम तथा विवाह की समस्या काम समस्या को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। मिश्रजी ने नारी पात्रों के माध्यम से स्वच्छंद प्रेम एवं यथार्थ की अपेक्षा सामाजिक आदर्श को अधिक महत्त्व दिया है। दोनों नारी पात्र शिक्षित एवं बुद्धिवादी होने से समस्या का विवेचन तर्क-वितर्क से करती हैं। भावना के धरातल पर बौद्धिक रूप से समस्या को यथार्थ में प्रकट किया है, किंतु समाधान आदर्शवादी रहा है।

"राजयोग" में चिरंतन नारीत्व की प्रेममूलक समस्या को प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा को महत्त्व दिया गया है। "आधीरात" नारी की विवशता को प्रस्तुत किया है। दानवी और दैवी प्रवृत्तियों का अंतर्द्वद का चित्रण

किया है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नारी के उच्छृंखलित प्रेम की परिणति भारतीय आदर्श में किया हैं।

इस तरह मिश्रजी ने अपने समस्या नाटकों में पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय दिखलायी है। इन नाटकों में बुद्धिवाद पर अधिक जोर दिया गया है। किंतु नाटक की आत्मा भारतीय ही है। इनके समस्या नाटकों के पात्र प्रारंभ में भावुक बन जाते हैं। प्रेम में असफल होने पर बुद्धिवादी का आधार लेकर तर्क-वितर्क करते हैं। समस्या का समाधान वे बौद्धिक व्याख्या कर के करते हैं। मिश्रजी की दृष्टि से बुद्धिवाद तीक्ष्ण होता है। जो सत्य से आँख चुराकर भागता है आनंद उससे भी दूर चला जाता है। कला की सार्थकता इसी में है कि वह जीवन को जागृत करें। मिश्रजी रूढिवादी का विरोध करते है किंतु समस्या के सुलझाने के प्रयास में खुद रूढिवादी बन गये हैं। इब्सन और शा के यथार्थ को इन्होंने स्वीकार किया है, पर भारतीय आदर्श का मोह छोड न सकें। वे यथार्थोन्मुख आदर्शवादी बन गये। पाश्चात्य यथार्थ एवं भारतीय आदर्श का सुन्दर समन्वय इन नाटकों में मिलता है।

मिश्रजी के संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक हैं - "अशोक", "नारद की वीणा", "गरूडध्वज", "वत्सराज", "दशाश्वमेध", "वितस्ता की लहरें", "वैशाली में बसन्त", "धरती का हृदय", "वीरशंख", "चक्रव्यूह", "अपराजित" और "चित्रकूट" आदि। इनमें भारतीय धर्म दर्शन और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को उद्‌घाटन किया है। मिश्रजी से प्राचीन संस्कृति के प्रति अगाध आस्था होने से उनके नाटकों में भारतीय संस्कृति की प्रधानता एवं गौरव तथा राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय संस्कृति बौद्ध धर्म के कारण बहुत अधिक अहित हुआ है। इसलिए मिश्रजी ने अपने इन नाटकों में बौद्ध धर्म की आलोचना की है। पाश्चात्य यथार्थवादी दृष्टिकोण का इन्होंने अनुकरण किया है किंतु भारतीयता का त्याग नहीं कर सकें। प्राचीन भारतीय संस्कृति के वे पोषक हैं। इनके नाटकों में भारतीय आदर्श, त्याग और भोग का समन्वय हुआ है। इन संस्कृति प्रधान नाटकों में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का स्वरूप मिलता है। इनमें मौर्य, गुप्त तथा शृंगवंश के इतिहास के साथ इतिहास से वंचित घटनाओं का वर्णन किया गया है।

मिश्रजी ने "कवि भारतेन्दु", "मृत्यंजय" तथा "जगतगुरू" जीवनी-परक नाटक लिखे। इनमें भारतेन्दु को एक युग दृष्टा के रूप में, गांधी सत्य-अहिंसा के एक अमर सेनानी के रूप में शंकर एक धर्म के रूप में चित्रित किया गया है। इन तीनों के प्रेरक एवं आदर्श चरित्र को प्रस्तुत किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्रजी का "सिंदूर की होली" सर्वोत्कृष्ट सामाजिक समस्या प्रधान नाटक है। इसमें नवीन मूल्यों की स्थापना के लिए प्राचीन जीवन मूल्यों और विश्वासों को उध्वस्त किया गया है। इस नाटक पर इब्सन और शॉ की बौद्धिकता का प्रभाव अधिक होने से बुद्धिवाद के धरातल पर ही समस्या को सूलझाया गया है। इस नाटक का स्वरूप यदि पाश्चात्य है, किंतु आत्मा भारतीय है। इसमें एक ओर बौद्धिकता चमक उठती है तो दूसरी ओर हृदयगत भावुकता। इसके पात्र प्रथम भावुकतावादी हो जाते है फिर बुद्धिवादी होकर परिस्थिति से समझोता कर लेते हैं। कला तत्वों की दृष्टि से "सिंदूर की होली- एक सफल समस्या नाटक है।

"सिंदूर की होली" की कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित संक्षिप्त, प्रवाह मय सार्थक तथा कौतुहलवर्धक है। नाटक का आरंभ ही समस्या से होता है। इब्सन और शॉ के समस्या नाटकों के समान मिश्रजी ने भी इस नाटक के प्रथम अंक में समस्या को प्रस्तुत किया है। दूसरे अंक में उसका समाधान बौद्धिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस नाटक की कथावस्तु का स्वरूप आज के यथार्थ परिवेश को लेकर इसी संदर्भ में आधुनिक जीवन बोध से संबंधित आधुनिक समस्या को चित्रित किया है। इस नाटक की दो विशेषताएँ हैं - एक इसमें केवल एक ही घटना का वर्णन है रजनीकांत की हत्या। वह भी सूचित कर दी गयी है। दूसरी विशेषता यह कि चंद्रकला भावावेग में आकर बिना यौवन का संसर्ग प्राप्त किये अविवाहित शिक्षित बुद्धिवादी नारी होते हुए भी सिंदूर की होली खेलती है और वैधव्य को वरण करती है।

इस नाटक की कथावस्तु "कर्म-प्रतिफ़ल-न्याय" सिद्धांत के आधार पर लिखी गयी है। मुरारीलाल को अपने किये का प्रायश्चित अंत में मिल जाता है। एक उच्चपदीय अधिकारी होने पर भी धन की लालसा उन्हें कहीं का नहीं छोडती। स्वयं

का न्याय वे कर नहीं सकतें। अंत में वे असहाय हो जाते हैं। अतः ईश्वर प्रणि.. उन्हें अपने कर्मा का फल मिल जाता है। अतः कथानक सुनियोजित, सुगठित तथा सुव्यवस्थित हैं। घटनायें, कार्य-कारण, श्रृंखला-बद्ध होने से कथा में गति आ गयी है। कथा का विकास स्वाभाविक तथा तर्क संगत रूप में हुआ है।

नाटक का शीर्षक कथानक की आत्मा की आभिव्यक्ति है। "सिंदूर की होली" से प्रत्यक्ष सम्बन्ध चंद्रकला और रजनीकांत के वैयक्तिक सम्बन्ध और मनोरमा के वैधव्य से है। चंद्रकला भावावेश में आकर मनोजशंकर से विमुख होकर विवाहित रजनीकांत के प्रति अपनी आत्मा का संपूर्ण वैयक्तिक समर्पण करती है। स्वयं उसके हाथों से माँग भरवाकर सिंदरू की होली खेलती है और अविवाहित रहते हुए विधवा हो जाती है। मनोरमा का वैधव्य विवाहोरान्त का है, जो समाज स्वीकृत है। समाज ने उसके सिंदूर की होली की है। फिर भी वह समाज के आदर्श को अपनाती है। इसतरह एक का सिंदूर आज मिट गया है तो दूसरी का कई वर्ष पहले नष्ट हो चुका है। इस तरह "सिंदूर की होली" शीर्षक अपनी सार्थकता स्पष्ट करता है।

"सिंदूर की होली" समस्या प्रधान एक प्रौढ़ रचना है। इस में व्यक्तिगत एवं समाजगत दोनों प्रकार की समस्याओं को उभारा गया है। व्यक्तिगत समस्याओं के अंतर्गत यौन समस्या, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, विधवा विवाह की समस्या और चिरन्तन नारीत्व की समस्या का चित्रण है। सामाजिक समस्या के अंतर्गत जमीदारों से उत्पन्न पारस्परिक कलह, आधिकारियों का रिश्वत लेना, न्याय की समस्या और अर्थलोलुपता की समस्या आदि को नाटककार ने लिया है। मिश्रजी ने इन समस्या पर मार्मिक शैली में बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रकृतिवादी दृष्टि से विचार किया है। वर्तमान की ज्वलंत समस्या की ओर मिश्रजी की पैनी दृष्टि रही है। जीवन की सम-सामायिक समस्या तथा नारी-समस्या को प्रमुख रूप से इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। स्त्री-पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों के चित्रण में ही उनका ध्यान अधिक केंद्रित रहा है। अतः "सिंदूर की होली" नाटक की समस्या आज की व्यक्ति की समस्याएँ है। अतः इन समस्याओं का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है -

पट्टीदारों के कलह की समस्या स्वातंत्र्यपूर्व जमीदारी के शोषण और उसके अत्याचार को प्रस्तुत करती है। भगवंतसिंह अपनी बराबरी करते हुए किसे देख नहीं सकता, इसलिए वह रजनीकांत की हत्या कर देता है। और यह समस्या पारिवारिक स्तर पर गंभीर स्वरूप धारण कर लेती है। इस हत्या के कारण रजनीकांत की परिवार की सारी आशाएँ मिट जाती हैं। चंद्रकला अविवाहित रहते हुए भी विधवा हो जाती है। तथा मुरारीलाल अस्वस्थ होकर जीवन के आगे घुटने टेक देते हैं।

कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या आज के वर्तमान की समस्या है। पट्टीदारों के कलह की समस्या ही इस समस्या को उपस्थित कर देती है। नाटककार ने बताया है कि आज का कानून अंधा है। वह देखकर भी देख नहीं सकता और सुनकर भी गूँगा हो जाता है। अतः दूर्लक्ष कर देता है। मुरारीलाल जैसे कानून के रक्षक न होकर चंद रूपयों की खातिर भक्षक बन जाते हैं और कितने ही निर्दोष युवकों की हत्याएँ हो जाती है। आजकल पैसे के बल पर कानून खरीदा जाता है। आज की न्याय प्रणाली स्वयंसिद्ध प्रमाणों की उपेक्षा कर सबूतों पर आधारित है। जो अपराध करता है वह पैसों के बलपर छूट जाता है और जो अपराध छिपाना नहीं जानता उसे सज़ा दी जाती है। फिर केवल पश्चात्ताप करने से बीता हुआ कल या बहा हुआ खून वापस नहीं आता। यदि इस प्रकार की कानून-प्रणाली होगी तो वह लाचार जनता के लिए किस काम की होगी? यदि वह न्याय नहीं दे सकता तो वह कानून नहीं है। यही मिश्रजी ने हमारे सम्मुख रखा है।

आधुनिक एवं चिरन्तन नारीत्व की समस्या इस नाटक की प्रधान समस्या है। प्रारंभ से ही पुरूष ने नारी को दासता में रखकर उस पर अत्याचार किये है। आज की नारी इससे छुटकारा पाकर स्वतंत्रता के वातावरण में जीवन निर्वाह करना चाहती है। लेकिन नारी आज भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है। पढ़ी-लिखी होकर भी अंधश्रद्धा से आक्रांत है। इस नाटक की चंद्रकला और मनोरमा शिक्षित बुद्धिवादी तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है। चंद्रकला स्वयं की अनुभूति, यथार्थ को महत्त्व देती है और समाज की उपेक्षा करती है। मनोरमा में रूढ़ि की पराकाष्ठा होने से समाज के आदर्श को अपनाती है। पुर्नविवाह से इन्कार करती हुई पुरूष जाति का

धिक्कार करती है। अपना सर्वस्व समाज के लिए त्याग कर देना चाहती है और स्वयं के वैधव्य को अमर करना चाहती है।

इस प्रकार इन नारी पात्रों की समस्या को मिश्रजी ने बुद्धिवाद द्वारा सुलझाने का प्रयास किया है। किंतु स्वयं ही उसमें उलझ गये हैं। इन्होंने इस समस्या का केवल सैद्धांतिक विवेचन किया है। व्यावहारिक रूप में इसका होना असंभव है। इब्सन और शॉ के नारी पात्र व्यावहारिक जीवन की ओर आकृष्ट होते हैं, जबकि मिश्रजी के नारी पात्र परिस्थिति से समझौता कर लेते हैं। इन में हृदय और बुद्धि का द्वंद्व मिलता हैं। इस प्रकार पाश्चात्य बौद्धिकता के आवरण में भारतीय आत्मा दर्शायी है। नारी को व्यक्तिगत स्वातंत्र्य न होने से उसे व्यक्तित्व बनाये रखने के लिए समाज में कोई अधिकार नहीं है। यही मिश्रजी ने सिद्ध किया है। इनके मत से नारी कोई सौदे की वस्तु नहीं है। वह किसी एक पुरूष की होकर रह सकती है अनेक पुरूष की नहीं। यही भारतीय संस्कृति हैं। इसीलिए चंद्रकला अपने स्थायी प्रेम के लिए तो मनोरमा सामाजिक आदर्श को शाश्वत बनाये रखने के लिए पुनर्विवाह न कर चिरन्तन नारीत्व बनाए रखने की कोशिश करती है। लेकिन इस वर्तमान काल में चंद्रकला मनोरमा जैसे नारी का होना संभव नहीं है। व्यक्ति की प्रवृत्ति परिवर्तनशील रहती है। परिस्थिति के अनुरूप वह अपना रास्ता मोड लेती है। इसलिए कोई भी व्यक्ति चिरन्तन तत्व का प्रणेता नहीं हो सकता।

नारी जीवन की दूसरी महत्वपूर्ण समस्या है विधवा विवाह की। भारतीय समाज में विधवा का होना घातक माना है। किंतु विधवा विवाह से वैधव्य नहीं मिटेगा बल्कि तलाक की समस्या निर्माण होगी और विश्वास में व्यक्ति भटकता रहेगा। इसलिए मनोरमा मनोज को प्रेमी के रूप में स्वीकार करती है, पति के रूप में नहीं। अपनी कमजोरी को वह समाज के आदर्श में छिपा देना चाहती है। सेवा और उपकार के हेतु अपने जीवन को समर्पण कर देती है। चंद्रकला स्वयं वैधव्य को धारण कर पुनर्विवाह का खंडन करती है।

विवाह एक सामाजिक संस्था है। इससे प्रेम अधिक घनिष्ठ एवं दृढ

होता है। विधवा का संयम, साधना, त्याग और तपस्या अवश्य गर्व की वस्तु है, किंतु आदर्श के मृगजल में वह बहुत दिन तक टिक नहीं पाता। आदर्शों का मृगजल तो जीवन को बीताने का एक सहारा मात्र है, कोरा दिखावा है। नारी के लिए केवल प्रेम ही सत्य नहीं है। सामाजिक सम्मान के अभाव में वह जी नहीं पाती। कोई भी यश और कीर्ति की उपेक्षा नहीं कर सकता। सामाजिक जीवन मे चंद्रकला और मनोरमा जैसी नारी का मिल जाना उतना आसान नहीं है। इसलिए मिश्रजी ने इस समस्या का केवल सैद्धांतिक विवेचन किया है। व्यावहारिक पक्ष की ओर पूर्णरूपेण उपेक्षा की है। इनके चरित्र में भारतीय रूढ़िवाद को स्पष्ट किया है। विधवा-विवाह की अस्वीकृति का कारण मिश्रजी का भारतीय मोह मात्र है, किसी बौद्धिक तर्क की उत्पत्ति नहीं। यथार्थवाद के प्रयोग की अपेक्षा आदर्शवाद को महत्त्व दिया है। नारी का आजीवन वैधव्य स्वीकार करना उनकी शिक्षा पर निर्भर है। किंतु भारतीय नारी इतनी स्वयंपूर्ण नहीं है कि स्वयं अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। इस प्रकार मिश्रजी ने एक आदर्श के रूप में तो दूसरा प्रेम के रूप में विधवा-विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है।

नारी जीवन की अगली समस्या विवाह की है। विवाह एक सामाजिक संस्था होने से उसमें संदेह एवं फिसलने का भय नहीं होता। चंद्रकला परम्परागत विवाह-पद्धति का विरोध करती है। मानसिक वरण को वह सामाजिक रूढ़ियों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानती है। मनोरमा परम्परागत विवाह का स्वीकार करती है। अपने वैधव्य को वह अपनी संस्कृति का परम आदर्श मानती है। युवा स्त्री-पुरूष बिना विवाह के एक साथ नहीं रह सकतें। इसलिए मनोरमा एवं चंद्रकला मनोज का त्याग करना स्वीकार करती है। क्योंकि भारतीय नारी का तो विवाह केवल एक बार ही हो जाता है।

इस तरह नाटककार ने विवाह और प्रेम को एक दूसरे के पूरक न मानकर अलग अलग स्थान दिया है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रयोग करते हुए मिश्रजी ने भारतीयता का त्याग नहीं किया है। इन्होंने एक ओर सामाजिक विवाह को महत्त्व दिया है, तो दूसरी ओर वैयक्तिक प्रेम विवाह को। इस नाटक की नारी पात्रों का पति केवल

नाम मात्र है। एक ने अपने पति को देखा तक नहीं और दूसरी ने पति को सिर्फ देखा है। चंद्रकला के पति को भी मालुम नहीं वह उसकी पत्नी है, क्योंकि वह कुछ क्षणिक काल तक ही जीवित रहा। इसके बावजूद भी दोनों पुनर्विवाह को अस्वीकार करती है। किंतु इनका यह आदर्श व्यावहारिक रूप में खरा नहीं उतरेगा।

इस नाटक की महत्त्वपूर्ण समस्या है स्वच्छंद प्रेम की समस्या। चंद्रकला सामाजिक मर्यादाओं की उपेक्षा कर स्वच्छंद प्रेम को अपनाती है। किंतु नाटककार ने स्वच्छंद प्रेम को इतना महत्त्व नहीं दिया है जिससे सामाजिक मर्यादा पर कोई आँच आये। मन की स्वच्छंद उडान एक मानसिक व्यभिचार है। यह शारीरिक भूख है। यह आधार-हीन प्रेम समाज के लिए हितकर नहीं होता। यह केवल एक कामवासना की उच्छृंखला का रूप माना है। इसलिए विवाह को महत्त्व दिया गया है। संदेह-हीन तथा सामाजिक मर्यादा से आवद्ध प्रेम में घनिष्ठता होती है। जीवन की विषम स्थितियों मे टूट जाने का भय नहीं रहता। इस तरह दोनों नारी पात्रों में प्रेम तत्त्व का निरूपण हुआ है। एक में वैयक्तिक यथार्थ के रूप में तो दूसरी में सामूहिक आदर्श के रूप में। मिश्रजी ने स्वच्छंद प्रेम एवं विवाह के माध्यम से पाश्चात्य एवं पौर्वात्य का सुंदर सामंजस्य किया है।

मिश्रजी पर फ्रायड का प्रभाव होने से काम समस्या को इस नाटक में व्यक्त किया है। इस नाटक की नारी एक ओर पुरुष की रूप लोलुपता और उसकी वासनात्मक वृत्ति की निंदा करती है तो दूसरी ओर प्रथम दर्शन में स्वयं अनुरक्त भी हो जाती है। प्रेम में असफल होने पर प्रेम और विवाह का द्वंद प्रस्तुत करती है। मिश्रजी ने यौन-प्रवृत्ति का बौद्धिक - मनोवैज्ञानिक एवं क्रांतिव्यंजक विवेचन किया है। इनके नारी पात्र परिस्थिति वश विवाह कर लेने है या रास्ता मोड लेते है। किंतु प्रेमी के प्रति उनका यौन-विषयक लगाव बना रहता है। जिस प्रकार चंद्रकला का रजनीकांत के प्रति और मनोरमा का मनोज के प्रति। मिश्रजी की दृष्टि से पतित्त्व एक ही हो सकता है किंतु प्रेमी अनेक हो सकते हैं। इस नाटक की समस्याओं के मूल नारी प्रेम और विवाह से पूर्ण सेक्स की समस्या है। नव युवक युवतियाँ प्राचीन रूढ़ियों और विवाह पद्धितियों से डरकर समझौता कर लेते हैं। और उनकी कामवासना

एक मनोग्रंथि का रूप धारण करती है। वयोवृद्ध मुरारीलाल भी काम समस्या से पीड़ित है। अतः यह एक भयंकर समस्या है। इससे ही मानसिक व्यभिचार होता है जो शारीरिक व्यभिचार से भयंकर होता है।

इस नाटक की महत्त्वपूर्ण समस्या है अंतरद्वंद अथवा मानसिक संघर्ष की समस्या। "सिंदूर की होली" के सभी पात्र इस समस्या के दास बन चुके हैं। इन पात्रों की क्रियाशीलता की कमी है इसकी पूर्ति अंतरद्वंद से हुई है। इसलिए मिश्रजी इस समस्या को सुलझाने के प्रयास में स्वयं उलझ जाते हैं। मानसिक बीमारी के कारण ही चंद्रकला युवावस्था में वैधव्य को वरण करती है। मनोरमा अपनी कमजोरी को सामाजिक आदर्श में छिपाकर मनोज को अस्वीकार करती है। मनोजशंकर पिता की आत्महत्या से पीड़ित होने के कारण ही किसी कार्य में सफल नहीं हो पाता है। शिक्षित तथा बुद्धिवादी होने पर भी जीवन पथ पर उसकी सदैव हार हो जाती है। दस वर्ष चंद्रकला के संपर्क में रहने पर भी वह उसे अपना जीवन-साथी नहीं बना पाता। मुरारीलाल अपने मित्र की एवं रजनीकांत की हत्या से पीड़ित है। इस कारण वे स्वयं को प्रायश्चित देना चाहते हैं किंतु असहाय तथा अस्वस्थ बनकर रह जाते हैं। मुंशी माहिरअली का भी इन हत्याओं में सहयोग होने से खुद को बार-बार अपराधी समझता है। इस तरह इस नाटक के सभी पात्र मानसिक संघर्ष के कारण भीतर से पूर्ण तरह टूट चुके हैं। इस मानसिक व्यभिचार के कारण वे अपने समस्याओं को ठिक तरह से सुलझ नहीं पाते हैं उल्टे उसमें उलझ जाते हैं। इस समस्या का विश्लेषण मिश्रजी ने बुद्धिवादी तार्कीक विचार पद्धति से किया है और भारतीय आदर्श में उसके समाधान की खोज की है।

इस नाटक में आज के वर्तमान जगत की ज्वलंत समस्या है रोग के उपचार की समस्या। आज का मानव बुद्धिवादी होने से अंतरद्वंद से पीडित है। इसलिए आज की अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विक्षोभ के कारण होती हैं। इसका इलाज शारीरिक दवा से किया जाता है। और बीमारी घटने की बजाय बढ जाती है। रोग के कारण अनुसंधान नहीं किया जाता। रोग की कल्पना करके दवा दी जाती है, जबकि वह घातक सिद्ध होती है। चंद्रकला की बीमारी मानसिक रोग निदान के ज्ञान

के बिना आज की चिकित्सा प्रणाजी तथा वैज्ञानिक उपलब्धि अपूर्ण एवं असमर्थ है। वैज्ञानिक प्रणाली एवं अविष्कारों से आज का बुद्धिवादी मनुष्य चेतना शून्य बनता जा रहा है। मिश्रजी ने इस चिकित्सा-प्रणाली पर व्यंग्य किया है और प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को महत्त्व दिया है। चंद्रकला की बीमारी प्रकृति के कारण ही ठिक हो जाती है।

"सिंदूर की होली" की महत्त्वपूर्ण समस्या बुद्धिवादी की समस्या है। इस नाटक के सभी पात्र बुद्धिवादी हैं। तर्क द्वारा समस्या को सूलझाने का प्रयास करते हैं। वे अंतर में वेदना और तडप का अनुभव करते हैं किंतु संस्कारों को तोडकर अलग हो जाने का साहस उनमें नहीं है। चंद्रकला रूढ़ियों का खंडन करके अपने वैधव्य को सार्थक करती है, तो मनोरमा मनोज को अस्वीकार कर अपने तर्क से सामाजिक आदर्श को। दोनों नारी बुद्धिवादी होकर भी अंधश्रद्धा से बूरी तरह फँस गयी हैं। इसलिए अपनी समस्या का पूरी तरह से समाधान नहीं कर पाते हैं। मुरारीलाल और मनोजशंकर उच्च शिक्षित परम बुद्धिवादी होकर भी एक पुरानी उलझन में फँस जाते हैं और अपने कार्य में असफल हो जाते हैं। मिश्रजी यथार्थ का प्रयोग करते हैं किंतु उसकी आँच भारतीय संस्कृति, रूढि एवं सामाजिक आदर्श पर नहीं आने देते। वे एक ओर बुद्धिवादी की व्याख्या करते हैं, किंतु हल भारतीयता में खोजते हैं। इस तरह "सिंदूर की होली" नाटक का स्वरूप बुद्धिवादी है किंतु आत्मा भारतीय हैं।

मिश्रजी पर पश्चिम बुद्धिवाद का प्रमाण अधिक रहा हैं। संसार की समस्या को वे बुद्धि से सुलझाने का प्रयास करते है, किंतु व्यावहारिक रूप में इनका बुद्धिवाद खरा नहीं उतरता वैसे इस नाटक का उद्देश्य बुद्धिवाद सिद्धांत की प्रतिष्ठा करना रहा है। इनके पात्र प्रथम भावुक होते है। प्रेम में असफल होने पर बुद्धिवाद के आधार पर तर्क करते हैं। मिश्रजी ने भावना के धरातल पर बुद्धिवाद की अभिव्यक्ति की है।

प्राचीन काल में मानव न तो इतना बुद्धिवादी था। इसलिए उसे न तो कोई आवश्यकताओं की कमी महसूस होती थी और न ही सोच विचार करके

किसी समस्या में उलझ जाता था। किंतु आज का मानव बुद्धिवादी है, क्या यह अपराध है क्या? जो हर वक्त छोटी मोटी समस्या के लिए अपने दिमाग पर जोर देता रहता है और किसी न किसी समस्या में उलझा रहता हैं। मिश्रजी ने इस ज्वलंत समस्या को इस नाटक में यथार्थ रूप से स्पष्ट किया हैं।

"सिंदूर की होली" नाटक में बुद्धिवादी के साथ भावुकता की भी समस्या जुडी हुई है। इसमें मिश्रजी ने भावुकता का विरोध किया है, किंतु उनके पात्रों को एक अजीब रोमानी भावना घेर लेती है। इस नाटक की मूल समस्या भावलम्बनवादी आकर्षण की समस्या है। इसके कारण ही नाटक में सामाजिक समस्याओं का उद्भाव होता है। इस नाटक के नारी पात्र बुद्धिवादी तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हैं, फिर भी भावुकता का त्याग नहीं कर सकती। चंद्रकला भावावेश में आकर विवाहित एवं मरणासन्न रजनीकांत से विवाह कर लेती हैं। इसके जैसा न कोई वैधव्य स्वीकार करेगा या प्रायश्चित करेगा। लेकिन प्रेम में असफल होने पर बुद्धिवादी हो जाती है। इसी प्रकार मनोरमा भावुक होने से ही मनोजशंकर की ओर आकर्षित होती है तथा कला का आधार लेती है। जब इसमें असफल होती है तब वह भी तर्क वितर्क करती है। इस प्रकार मिश्रजी ने भावना के धरातल पर ही बुद्धिवादी की व्याख्या कर समस्या को सूलझाने का प्रयास किया है। इनके पात्र प्रथम भावुक फिर बुद्धिवादी बन जातें हैं। वास्तव में कोई व्यक्ति भावुकताविहीन नहीं हो सकता। दो नारी पात्रों के माध्यम से भावना और बुद्धि का सुन्दर सामंजस्य नाटककार ने किया है।

नाटक के आरंभ में ही अर्थलोलुपता की समस्या को नाटककार ने प्रस्तुत किया है। मुरारीलाल एक उच्च पदीय अधिकारी न्याय के रक्षक होकर भी उनकी धन की लालसा के कारण दो हत्याएँ उनके द्वारा हो जाती है और पारिवारिक स्तर पर यह समस्या एक गंभीर रूप धारण कर लेती है। अंत में यह धन उनके किसी काम नहीं आता। उनकी इकलौती बेटी तथा सभी उनका साथ छोड देते हैं। वे कानून के रक्षक न बनकर भक्षक बन जाते हैं। अपने किये पर पछतावा करते रहते हैं। उन्हें असफलता मिलने से अस्वस्थ तथा असहाय हो जाते हैं। मुरारीलाल आज के समाज वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। मिश्रजी ने बताया है कि इनके जैसे कितने ही लोग धन-लोलुपता के कारण कितनी हत्याएँ कर चुके हैं और स्वयं का जीवन

उद्धवस्त कर दिया है। आज के समाज की यह एक ज्वलंत समस्या है। कानून की रखवालों की प्रतिष्ठा एक लेन देन की व्यापार संस्था बन गयी है। राव्साहबी विशेषण, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा डिप्टी कलक्टर जैसे शब्द निरीह लगते हैं।

इस नाटक की अन्य सामाजिक समस्या है - रिश्वतखोरी की समस्या। अर्थ की लोलुपता ही रिश्वत को जन्म देती है। आज कल पैसों के बल पर कुछ भी किया जाता है। इस कारण रिश्ते-नाते टूट जाते है और अपने पराये लगने लगते हैं। डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल जैसे व्यक्ति रिश्वत लेने में जरा भी हिचकिचाते नहीं। उन्हें दूसरों की अपेक्षा अपनी समस्या महत्त्वपूर्ण लगती है। वे इसे पूर्ण करने के लिए किसी निर्दोष गरीब की जान भी लेते हैं। रजनीकांत की हत्या इसी कारण हो जाती है। मुरारीलाल समझते हैं कि रिश्वत लेने से कुछ नहीं विगडता। मेरे चाहने से कुछ नहीं हो सकता। आज का कानून ही ऐसा है। किंतु वे भूल जाते हैं कि व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र बन जाता है। उनके इस एक गलती से कितनी गलतियाँ हो जाते हैं और अनेक समस्याएँ निर्माण हो सकती है। किंतु अंत में यह रिश्वत उनके किसी काम नहीं आती। उन्हें अपने कर्म का प्रतिफल मिल जाता है। अतः मिश्रजी ने आज की समस्या को सम्मुख रखा है।

कला की समस्या को नाटककार ने प्रस्तुत किया है। मनोरमा कला का आधार लेकर जीवनयापन करती है। उसके भावुकता का निरूपण कला में होता है, जिसे कोई समझ नहीं सकता। अंत में वह कला का त्याग कर देती है। इसी समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

अतः "सिंदूर की होली" नाटक समस्याओं की दृष्टि से एक सफल अभिनव रचना है। हिन्दी नाट्य-साहित्य की यह एक अनुपम उपलब्धि है। इसके कारण लक्ष्मीनारायण मिश्रजी का स्थान हिन्दी नाटक साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है।